P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-IV*December-2014
E: ISSN NO.: 2349-980X

हिन्दी सिनेमा एवं सामाजिक चेतना के विविध आयाम

कामिनी ओझा
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर
(राजस्थान)

सारांश

भारतीय हिन्दी सिनेमा में दादा साहेब फालके की राजा हरिश्चन्द्र से लेकर विशाल भरद्वाज की हैदर तक कई उतार चढ़ाव देखे, कई सितारों की रोशनी को देखा तो कहीं सूरज की तरह किसी सितारे को ढ़लते हुए भी देखा है। सिनेमा की शुरूआत की कहानी समाज से हुई है। वो सपना जिनके बारे में समाज के पास शब्द नहीं है, वो उसे विस्तृत नहीं कर सकतें उसे अगर किसी भी तरह फिल्म निर्माता यदि समझ लेता है और उसे सिनेमा के रूप में लोगों के सामने ला खड़ा कर देता है तो वहीं सिनेमा है।

मुख्य शब्द : सामाजिक, राष्ट्रीय चेतना, संस्कृति और साहित्य

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमारी फिल्मों का एक निश्चित उद्देश्य होता था। भारतीय युवा मन को आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करना और विभिन्न तरीकों से समाज सुधार के लिए काम करना, साथ ही समाज में फैली कुरीतियों, कुंठाओं, अर्थहीन रीति–रिवाजों के विरूद्ध जन मानस चेतना की लहर दौड़ाना, जिसके लिए विभिन्न फिल्म निर्माताओं ने विदेशी शासन के खिलाफ देश में वातावरण तैयार करने और भारतीय जनता को अपनी संस्कृति और साहित्य से अवगत कराने के लिए विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर फिल्में बनाई।

इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में फिल्मों ने भी अमूल्य योगदान दिया है। वी. शांताराम ने सामाजिक कथानकों पर आधारित अपनी फिल्मों के माध्यम से भी राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता को उजागर किया। धीरे–धीरे भारतीय सिनेमा पर व्यवहार हावी होता जा रहा था। समय–समय पर समाज में बदलाव होते जा रहे थे, फिर भी ऐसे कई निर्देशक रहे तो सिनेमा को समाज के सापेक्ष सार्थकता देने में लगे रहे हैं।

सिनेमा में शिल्प और कथ्य का बहुत महत्व है। शिल्प और कथ्य की प्रभावशीलता फिल्म की कथा और उसमें रचे गए संवादों से जुड़ी होती है। सिनेमा की कहानियों का ढांचा आम कहानियों से कुछ अलग होता है। इसके आधारभूत ढांचे में अन्तर होता है। हिन्दी सिनेमा में नायक तथा नायिकाओं की भूमिका भी एक अहम् भूमिका होती है। नायक एवं नायिकाएं भी समाज का ही एक रूप है। हिन्दी सिनेमा में कलाकार, कैमरामैन, साउंड रिकार्डिस्ट, कॉस्टूयम डिजाइनर, प्रोडेक्शन कंट्रोलर इत्यादि की भूमिका भी अहम् होती है। एक फिल्मकार सभी अलग–अलग तत्वों का मेल कराने में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है ताकि उनका संयुक्त प्रभाव पहुंच सके। हर एक निर्माता की कोशिश होती है कि वह दर्शक का मनोरंजन इस तरह करे कि वह बार–बार उसी की फिल्में देखने आए। आम दर्शक के कबूल करने के बाद कलाकार जैसा भी, जो भी करता है, उसे स्वीकार किया जाता है। जनता द्वारा स्वीकृति से कलाकार का आत्म विश्वास भी बढ़ जाता है।

गुरूदत्त, राज खोसला, विजय आनन्द, वी. शांताराम जिस तरह से अपनी फिल्मों में गीतों को बयां करते थे। वह परंपरा आज की फिल्मों में लुप्त है। उस दौर में सीन पर जितना महत्व दिया जाता था, उतना ही गीतों पर भी, लेकिन आज ऐसा नहीं है, आज बस गाने फिल्मों के साथ परोस दिये जा रहे हैं। पहले धुन होती थी और उसके हिसाब से गीत होते हैं। कैफी साहब ने भी यह बात कही थी कि पहले कब्र खोदी जाती थी और मुर्दा बाद में ढूंढ़ा जाता है।

लोरी की दुनिया

हिन्दी सिनेमा में इसके शुरूआती दौर से ही हर दूसरे फिल्म में लोरी जरूर होती थी। लोरी की दुनिया दरअसल सपनों की दुनिया है। मां की लोरी में ऐसे हसीन और सुहाने वादे होते है कि मां के चेहरे पर आते भावों से रीझकर दुनिया के हर बच्चे के चेहरे पर पहले मुस्कान और आंखों में नींद आ जाती है,

तब शायद सपनों में भी मां होती है, और उसके साथ उसके वादों की दुनिया भी।"

दुनिया बदली सो बदली, क्या मां और बच्चों के रिश्ते में भी बदलाव आ गया? हिन्दुस्तान ही नहीं, तमाम दुनिया में भी ना जाने कब से मां और बच्चों के रिश्ते में पालने और लोरी का एक अटूट संबंध रहा है। मगर आजकल लोरी गाने का चलन बहुत कम हो गया है, खसकर शहरों में। हमारे सिनेमा से तो यह लगभग पूरी तरह गायब ही हो गया है।[1]"

सामाजिक प्रतिबद्धता और जीवन संघर्ष

सामाजिक प्रतिबद्धता और आम लोगों के जीवन संघर्ष को निर्माता आमिर खान और निर्देशक आशुतोष गोवारीकर की फिल्म लगान में चित्रित है। "यह अकल्पनीय लगता है कि क्रिकेट का ककहरा भी नही जानने वाले किसानों के किस तरह अंग्रेजों की टीम का मुकाबला किया होगा। पर संप्रेषणीयता के स्तर पर 'लगान' इतनी प्रभावी है कि इस तरह की अकल्पनीयता को यह फिल्म अत्यन्त विश्वसनीय बना देती है। सूखे और गरीबी की मार से त्रस्त किसानों के संघर्ष की यह फिल्म पुरजोर तरीके से परदे पर पेश करती है और जीत की पूरी प्रक्रिया को एक–एक फ्रेम में कुशलता से उतारा गया है।[2]" लगान कई मामलों में विशिष्ट रही है।

यदि हम सिनेमा को एक समाज सुधारक के रूप से देखे तो इसमें हिन्दी सिनेमा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। सिनेमाई जगत में भी कभी भी ऐसी फिल्म नहीं बनी जिसमें आजकल की युवा पीढ़ी अपना अंश देख सकें राजू हिरानी की 'थ्री इडियट्स' को देखने के बाद हमारे में अपनी प्रतिष्ठा को नहीं बल्कि अपने बच्चों की खुशी को ज्यादा महत्व दें। आमिर खान ने अपनी खाफी फिल्मों में समाज के लिए एक संदेश सदा छोड़ा, उनमें से कुछ प्रमुख फिल्में है, लगान, मंगल पाण्डेय, तारे जमीन पर, थ्री इडियट्स, धोबी घाट, दिल चाहता है, रंग दे बसंती आदि। फिल्म रंग दे बसंती ने 21वीं सदी के युवाओं को उसकी ताकत से रूबरू कराया है। परन्तु सिनेमा एक समाजसुधारक का ये जो दायरा यह सिर्फ पर्दे तक ही सीमित नहीं है। एक फिल्म बनाने में कई लोगों का योगदान है जिसमें फिल्म के निर्माता से लेकरर स्पोड बॉय तक होते है, फिल्म की पूरी यूनिट में 100–150 से भी अधिक लोग होते है, जो अलग अलग रंग, वेशभूषा, जाति–संप्रदाय, प्रांत व अलग वातावरण से आते है मगर एक लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक साथ काम करते है व बखूबी करते है। उदाहरण के लिए – एक हिन्दू फिल्म निर्माता, एक मुस्लिम अदाकार के साथ, एक पंजाबी इंसान की जिन्दगी पर एक फिल्म बनाता है और हमारे भारतीय दर्शक उसे सम्मान के साथ स्वीकारते है, क्या ऐसा मिश्रण दुनिया के किसी भी देश या प्रांत में देखने को मिलेगा? नहीं, क्योंकि ऐसा सिर्फ भारत में संभव है ये एक तरह से भारत के लोगों में एक जुटता की भावना का संचार करता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकार

सिनेमा हामरे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों को प्रभावित करता है। सामाजिक, सांस्कृतिक या आर्थिक परिवर्तन को गति अवश्य मिलती है। पहले 'मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.' फिर 'लगे रहो मुन्नाभाई' ने एक उद्देश्यपूर्ण सिनेमा समाज में लोगों को अनुकरण के लिए प्रेरित किया है।

'लगे रहो मुन्ना भाई' नई पीढ़ी के लिए गांधीवाद के प्रति प्रेरणा का स्त्रोत बनकर आई। 'इस फिल्म में हिन्दी भाषा को एक नया शब्द गांधीगिरी प्रदान किया है।' जो आजकल हर आम और खास की जुबान पर है। वैसे तो इस शब्द को लेकर खासा विवाद भी हुआ है और यह स्वभाविक भी है क्योंकि गिरी प्रत्यय की व्यंजना प्रतिकर नहीं होती। परन्तु गांधी विचार जैसे अति गंभीर विषय को इसमें बड़े ही हल्के–फुल्के अंदाज और गंभीरता को किंचित्र मात्र भी कम किये बगैर, यह इसी बहुत बड़ी विशेषता है।'

गांधी जी कोई चमत्कार नहीं चाहते थे। वे मनुष्य के श्रम से देशी साधनों के साथ स्वदेशी विकास चाहते थे। बहरहाल आज के असहिष्णु आक्रामक काल खंड में भी उनका महत्व है और भयावह भविष्य तो उनकी वापसी का पथ प्रशस्त करेगा।

"सिनेमा की दुनिया कमाल निराली है। इसके कुछ पहलू इस कदर काले है कि देखने वालों के आंसू निकल पड़ते है। दूसरी तरफ बेहद हसीन और दिलकश किस्म की ऐसी दुनिया है कि उस दुनिया का हिस्सा बनने को हर एक का जी ललचा जाता है और फिर बाली दुनिया की इस तरह इसकाक एक ऐसा कोना भी है, जहां पहुंचकर सिर्फ हंसी आती है।"[3]

प्रोडक्स कंपनी नौटंकी फिल्मस निर्माता अभिनव शुक्ला और निर्देशक रविन्द्र गौतम की फिल्म 'इक्कीस तोपों की सलामी' परिवार और समाज के पिता–पुत्र के बीच फिल्माई गयी है। जिसमें नोक–झोंक और निश्चल प्रेम को प्रेरित करने वाली तथा हर वो काम अपने पिता के लिए करने का हमने सोचा जरूर लेकिन कर नही पाते है। यह फिल्म जिसमें रिश्ते, समसज, आम आदमी की समस्याएँ और उनके निराकरण शामिल है। अभी आने वाली फिल्मों में भी दिल के छोटे–छोटे भावों का स्थान देता हैं सारी जिन्दगी ईमानदारी से काम करने के बावजूद उन्हें बेईमानों के फैलाएं हुए जाल के कारण जिल्लत सहनी पड़ती है। तब बेटे संकल्प लेते हैं उन्हें उनके हक का सम्मान दिलाने का। मेरा यह मानना है कि पिता और बेटों को ये फिल्म एक साथ बैठकर देखनी चाहिए।

हबीब फैजल की फिल्म 'दावते–इश्क' जिसमें फिल्म के प्रारम्भ में आंकड़े दिए गए है की आज भी भारत में प्रतिदिन दहेज के कारण लड़कियों त्रास भुगतती है और मर जाती है। फिल्म के अंत में भी एक लड़का दहेज ठुकराता है परन्तु यथार्थ में ऐसे लोग नहीं है। यथार्थ जीवन का सबसे भयावह सच डर है जो जीने भी नही देता और गरिमा से मरने भी नही देता। गांधी जी ने भारत में आजादी के लिए आंदोलन के प्रारम्भ में ही कहा था कि हमें सबसे पहले डर से ही मुक्त होना है। आज के व्यापारिक दौर में भी गांधीवाद की बाम भी नहीं करना चाहिए। अब साम्राज्यवाद फौज के दम पर नहीं आता, वह इसी तरह पूंजी निवेश के रूप में आता है। एक हास्य फिलम के विवरण में गांधी स्मरण इसलिए भी किया जाता है कि दहेज की कुप्रथा पर भी पहला प्रहार उन्होंनं ही किया था और दावते–इश्क में भी मुद्धा दहेज का ही है परन्तु हबीब ने सारा प्रस्तुतीकरणा हास्य के माध्यम से किया है और फिल्म में कोई भाषणबाजी नहीं है परन्तु गंभीर संकेत अवश्य है।

विगत दशकों में छोटे शहरों और कस्बों के अनेक युवा लोगों को खेल–कूद इत्यादि क्षेत्रों में कामयाबी मिली है। दरअसल भारत में प्रतिभा का अकाल नहीं है, अकाल अवसर का है।

आम जीवन में भी जब अनायास खूब धन आने लगता है। तो मनुष्य खर्च बढ़ा लेता है परन्तु आय सदैव समान नही रहती है। बचत मध्यम वर्ग की विशेषता रही है परन्तु आर्थिक उदारवाद के बाद रंगीन बाजार में ऐसा मायाजाल रचा कि किफायत का स्थायी भाव गायब कर दिया गया है। संतुलन को दकियानूसी करार दिया गया है।

धूमिल की कविता, 'एक आदमी रोटी बेलता है, एक आदमी रोटी खाता है और एक तीसरा आदमी है जो न रोटी बेलता है न रोटी खाता है, वह सिर्फ रोटी से खेलता है। मैं पूंछता हूं यह तीसरा आदमी कौन है, मेरे देश की संसद मौन है।' शायद सन् 1979 की लिखी कविता है। अब तक संसद अनाज उगाने वाले, अनाज खाने वाले और उससे 'खेलने वालों' का मौन ही है। मेहबूब खान की आजादी के पहले बनी 'रोटी' में एक संवाद था कि अगर रोटी न मिले तो छीनकर ले ले। मनमोहन देसाई ने भी रोटी के नाम से राजेश खन्ना अभिनीत फिल्म अपने अंदाज में बनाई है।

सादगी की पहल तथा सामाजिक क्रांति

राजकपूर की 'प्रेमरोग' में भी जमींदार की सहायता से शिक्षा प्राप्त करके एक अनाथ उसकी युवा विधवा करना चाहता है। तो सामंतवादी व्यक्ति कहता है कि तुम उसे भगा ले जाओ, परन्तु युवा का आग्रह है कि समाज सुधर का उदाहरण वह जमींदार स्वयं दिखाए। दरअसल धनाड्य वग। को यह समझना होगा कि गरीब वर्ग की मदद उनके अपने हितों की रक्षा के लिए आवश्यक है।

सरकारे सामाजिक क्रांति नहीं लाती और सदैव ही क्रांति की पहल गरीब वर्ग या मध्ययम वर्ग से होती रही है परन्तु इन वर्गों को व्यवस्था ने मानसिक अय्याशी में डुबा दिया है अतः अब पूंजीवाद स्वयं की रक्षा की खातिर समाज सुधारकरे ऐसी आशा करना दुस्साहस है परंतु और/कोई रास्ता नजर नहीं आता। पूंजीवाद को अपने अस्तित्व के लिए मध्यम वर्ग को मानसिक विलास से बाहर निकालना होगा जहां स्वयं उसने उन्हें वहां ढकेला है।

"भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। किन्तु यह कहना गलत न होगा कि लोकतंत्र का सही स्वरूप आम जन के लिए नहीं हैं आम आदमी को स्वाभिमान से जीने का अवसर बहुत कम है। राजनीति की आड़ में कुत्सित स्वार्थों की पूर्ति की जाती है। वोटों की राजनीति का गंदा खेल खेलकर नेता युवा वर्ग के भविष्य के साथ, जो अत्याचार करते हैं।[4]" उसकी बानगी 21वीं सदी के युवा को 'मस्ती की पाठशाला' फिल्म में ही इतिहास बोध होता है तथा देश के प्रति लगाव का ज्ञान प्राप्त करता है।

सिनेमा केवल समाज को प्रभावित नहीं करता, बल्कि उससे प्रभावित भी होता है। समय–समय पर समाज में बदलाव आते रहे है, सिनेमा उन्हें सापेक्ष रूप में प्रतिबिंबित करता रहा है।

भूमण्डलीकरण और सिनेमा

वैश्वीकरण से दूरियां घट गई जिससे विदेशी लोकेशन पर शूटिंग करने की प्रवृति बढ़ गई। इस विश्व बाजार में पयिचमी देशों की खरीदने की क्षमता के हाथों सब बिक रहे है, मस्तभरी जिंदगी के सपने आज हिन्दी सिनेमा की जरूरत बना दी गई है। यह भूमण्डलीकरण का परिणाम है। "वैश्वीकरण की दो छवियों को रेखांकित किया है।" (1) पहली तो यह कि किसी विशिष्ट संस्कृति का अपनी सीमाओं से परे विश्व के अलग हिस्सों में फैलता (2) विभिन्न संस्कृतियों का आपस में घुलमिल जाना। हिन्दी सिनेमा के संदर्भ में देखे तो पायेंगे हॉलीवड के माध्यम से अमेरिकी संस्कृति ही दम पर डाली हुई है।[5]"

"भूमंडलीकरण के कारण अब अनिवासी भारतीय यही फिल्म के पात्र होने लगे है। उदाहरण परदेश, ताल, दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगेए दिल तो पागल है, कभी खुशी कभी गम, आ अब लौट चले आदि अपने देश की झूठी शान के संवाद भले ही उगले, उसकी तारीफ में गाने भले ही गाये, पर जो रहेगा विदेश सभ्यता पर। हिन्दी फिल्मों में अंग्रेजी का प्रयोग बढ़ा है और तकनीक की दृष्टि से कोई मिल गया, कृश जैसी हॉलीवुड मार्का फिल्म बन रही है और बेहतरीन कलेक्शन पर रही है।[6]"

दुनियाभर में आजकल भूमंडलीकरण का शोर है और इस माहौल में क्रॉसओवर सिनेमा का अपना अलग ही आकर्षण है। क्रॉसओवर की पहचान मिलने के बाद किसी फिल्म को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेचना काफी आसान हो जाता है। वह सिनेमा देश और समाज की सरहद को पार करते हुए दूसरे देशों में भी पसंन्द किया जाये, उसे क्रॉसओवर सिनेमा का दर्जा दिया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह फिल्म जो अपनी राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पहचान से बाहर निकलकर दूसरे देशों के सिने प्रेमियों का भी दिल जीत ले, उसे हम क्रॉसओवर फिल्म भी कह सकते हैं।[7]" अमेरिका में रहने के बावजूद मीरा मायर की फिल्मों में भारत के विविध रूपों की झलक मिलती है। ओवरसीज मार्केट और मल्टीप्लेक्स कल्चर को ध्यान में रखकर फिल्में बनाने वाले कुछ निर्माता है – करण जौहर, यश चोपड़ा, रवि चौपड़ा, सुभाष घई, राम गोपाल वर्मा, संजयलीला भंसाली, फरहान अख्तर आदि की अमेरिकी दर्शकों की काफी सराहना मिली है।

आजकल छोटे व बड़े कई देशों अन्जर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह होने लगे है। भूमंडलीकरण से जहां देशों के दर्शकों में नजदीकियॉ बढ़ रही है। वहां बाजारवाद के कारण बहुत महंगी फिल्मों का निर्माण भी हो रहा है। अमिताभ बच्चन, शाहरूख खान आदि की लोकप्रियता बहुत बढ़ी है। पिछले साल ये जवानी है दिवानी, चेन्नई एक्सप्रेस, ...रामलीला और रेस–2 जैसी 600 करोड़ से ज्यादा फिल्म ने कमाया है। 'हेप्पी न्यू ईयर' का पहले दिन का व्यवसाय 42 से 45 करोड़ माना जा रहा है।

संदर्भ सूची

1. बॉम्बे टॉकी–वाणी प्रकाशन, 2012 प्रथम संस्करण, पृ. सं. 126
2. सिने पत्रकारिता–श्याम माथुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2008, प्रथम संस्करण पृ.सं. 226
3. बॉम्बे टॉकी–वाणी प्रकाशन, 2012 प्रथम संस्करण, पृ. सं. 112
4. भारत में संचार माध्यम– प्रो. संजीव भानावत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2008 प्रथम संस्करण, पृ. सं. 328
5. भारत में संचार माध्यम– प्रो. संजीव भानावत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2008 प्रथम संस्करण, पृ. सं. 333
6. सिनेमा चार अध्याय– डॉ. टी. शशिधरन, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 99
7. सिने पत्रकारिता– श्याम माथुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2008 प्रथम संस्करण पृ.सं. 108